महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दि व्याख्यान माला

दयानन्द और प्रेमचन्द

व्याख्याता

मदन गोपाल

प्ररोचना

श्री बलभद्र कुमार हूजा

कुलपति

संयोजक

डा० विष्णुदत्त राकेश

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

९-१० फरवरी, १९८५

प्ररोचना

महर्षि दयानन्द का निर्वाण 30 अक्टूबर 1883 ई० को हुआ। उनके निर्वाण को सौ वर्ष हो गए। वह एक सार्वभौम व्यक्ति थे। नव जागरण के युग में उन्होंने समाज सुधार, शिक्षा, औद्योगिक तथा वैज्ञानिक उन्नति, समानता और सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता, स्वदेशी तथा स्वभाषा का उद्घोष करते हुए स्वतंत्र, समृद्ध तथा रूढ़िमुक्त राष्ट्र की संकल्पना की थी। 'सत्यार्थ प्रकाश' में उन्होंने मनु आदि धर्मशास्त्रकारों का युगानुरूप नवीन भाष्य प्रस्तुत किया। आत्मिक तथा भौतिक उन्नति का ऐसा संतुलित उपाय इतने विशद वैचारिक और व्यावहारिक स्तर पर महर्षि से पूर्व किसी समाज सुधारक तथा युग द्रष्टा ने नहीं सुझाया था। श्री विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ तथा श्री अरविन्द जैसे युग प्रवर्तक विचारक भी स्वामी जी से प्रभावित थे। स्वामी जी के कार्य का बहुआयामी अध्ययन अभी आर्य समाज से बाहर विद्वानों द्वारा वैसा नहीं हुआ जैसा होना चाहिए था। मेरा विश्वास है कि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में स्वामी जी के कार्य का पुनर्मूल्यांकन होना चाहिए, यह मूल्यांकन इसलिए भी आवश्यक है कि आज मानव धर्म, लोकतंत्र, सामाजिक समानता, सामूहिक अभ्युदय नैतिकता तथा लोक जीवन के उत्कर्ष से सम्बन्धित मूल्यों को खतरा पैदा हो गया है। पुनर्मूल्यांकन की दिशा में पहल करने के लिए हमने निर्वाण शताब्दी पर प्रसार-व्याख्यान माला का शुभारंभ किया है। इसके अन्तर्गत डा० भवानी लाल भारतीय, आचार्य एवं अध्यक्ष, दयानन्द पीठ पंजाब विश्वविद्यालय तथा डा० प्रभाकर माचवे निदेशक भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता के 'दयानन्द के विचार, समय की कसौटी पर' तथा 'दयानन्द, गांधी और मार्क्स' विषय पर व्याख्यान सम्पन्न हो चुके हैं और अब इस क्रम में दैनिक ट्रिब्यून के पूर्व सम्पादक तथा अंग्रेजी और हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री मदन गोपाल का तृतीय व्याख्यान 'दयानन्द और प्रेमचन्द' विषय पर आयोजित किया जा रहा है। आशा है, दोनों कालजयी विचारकों का यह तुलनात्मक अध्ययन विचार के लिए नई दिशाओं का उद्घाटन करेगा।

महर्षि दयानन्द ने धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक और [illegible]
क्षेत्रों में नवीन संभावनाएं व्यक्त की। स्वदेशाभिमान, स्व

गौरव को जाग्रत कर स्वाधीनता संग्राम का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने हताश पराधीन युवकों के भीतर सषुप्त अहं को जगाया जिनके कानों में निरन्तर यह शोक पूर्ण मंत्र फूंका गया था कि भारत का इतिहास सतत अपमान, अधःपतन विदेशियों की पराधीनता तथा बाह्य शोषण की शोचनीय गाथा है। प्रेमचंद का साहित्य भी साम्राज्यवादियों के फैलाये हुए इतिहास और संस्कृति सम्बन्धी भ्रमों और धारणाओं को छिन्न-भिन्न करने वाला है। उन्होंने सम्पूर्ण भारत तथा उसके स्वाधीनता-आन्दोलन को प्रतिबिम्बित किया। शासकीय आतंक के विरुद्ध त्याग और बलिदान का अमोघ व्रत लेकर चलने वाली जनसाधारण की सेना उन्होंने जन संस्कृति के रक्षार्थ खड़ी की। सांस्कृतिक और राजनीतिक जागरण के युग में जनवादी साहित्यिक आन्दोलन के वह पहरेदार थे। अब तक प्रायः प्रेमचंद, गांधी और तालस्ताय के तुलनात्मक अध्ययन की बात की जाती रही है पर दयानन्द के साथ उनका संबन्ध जोड़कर नहीं देखा गया। गवर्नमेंट सेन्ट्रल ट्रेनिंग कालेज इलाहाबाद में पढ़ते हुए वह प्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान पण्डित गंगा प्रसाद उपाध्याय के सम्पर्क में रहे थे। बरेली के आर्य समाजी शंकरलाल श्रोत्रिय के विज्ञापन को पढ़कर उन्होंने मुंशी देवीप्रसाद की बाल विधवा कन्या से पुनर्विवाह किया। अमृतराय ने तो लिखा ही है कि प्रेमचंद जी जलसों में तो जाते ही थे, आर्यसमाज के बाजाब्ता सदस्य भी थे। उन्होंने अपनी पुत्री कमला की प्रारंभिक शिक्षा का प्रबन्ध भी आर्य महिला विद्यालय लखनऊ में किया था। माधुरी का सम्पादन करते हुए सत्यदेव विद्यालंकार प्रणीत पुस्तक 'दयानन्द दर्शन', चमूपति जी कृत, ग्लेम्पसेज आफ दयानन्द तथा घासीराम कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के अंग्रेजी अनुवाद 'इन्ट्रोडक्शन टू द कमेन्ट्री आन द वेदाज' की उन्होंने साहित्यिक समीक्षा की थी। यही नहीं। प्रेमचंद के कहानी संग्रह 'सोजेवतन' की समीक्षा लाहौर से प्रकाशित आर्य गजट में छपी थी। 1926 में कांगड़ी से प्रकाशित अलंकार तथा गुरुकुल समाचार में कायाकल्प, प्रेम प्रतिमा तथा प्रेम द्वादशी की समीक्षाएं प्रकाशित हुई थीं। अलंकार के गुरुकुल जयन्ती विशेषांक में प्रेमचंद जी का 'ऋषि के जीवन का एक पृष्ठ' शीर्षक लेख भी प्रकाशित हुआ था। 1935 में प्रकाशित हंस में अलंकार के श्रद्धानन्द विशेषाङ्क की समीक्षा छपी है। कन्या गुरुकुल देहरादून से प्रकाशित तथा विद्यावती सेठ द्वारा सम्पादित 'ज्योति' पत्रिका में वरदान तथा रंगभूमि की समीक्षाएं प्रकाशित हुई। ज्योति के एक अंक में प्रेमचंद जी कीं पत्नी शिवरानी का 'भारतीय महिलाओं

का अपनी बहनों के प्रति कर्त्तव्य' लेख छपा था । बात जुलाई सन् 1924 की है । प्रेमचंद जी ने अपने दोनों पत्रों—जागरण और हंस—में स्वामी दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द के चित्र छापकर अपने आर्यसमाज विषयक भावों को स्पष्ट किया था ।

1926 के वार्षिकोत्सव पर प्रेमचंद जी गुरुकुल कांगड़ी पधारे थे अपने गुरुकुलीय संस्मरणों को उन्होंने माधुरी में प्रकाशित कराया था । गुरुकुल में आने से पूर्व वह गुरुकुल को साम्प्रदायिकता का केन्द्र मानते थे और जो भाषण वह लिखकर लाए थे, उसमें उनका पूर्वाग्रह लक्षित होता था पर यहां आकर उनकी धारणा बदल गई और उन्होंने वह लिखित भाषण न पढ़कर स्वतंत्र मौखिक विचार व्यक्त किए तथा स्वीकार किया कि गुरुकुल में वह गुरु बनकर आये थे परन्तु शिष्य बनकर जा रहे हैं । अगस्त 1927 की ज्योति में 'गुरुकुल में प्रेमचंद' शीर्षक के अन्तर्गत यह विवरण प्रकाशित हुआ । तत्कालीन आचार्य रामदेव ने उनका स्वागत करते हुए उनकी तुलना अंग्रेजी के साहित्यकार थैकरे से की थी । 1936 में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वार्षिकोत्सव पर लाहौर में उन्होंने सभापति पद से जो व्याख्यान दिया था उसमें गुरुकुल शिक्षा पद्धति, नारी शिक्षा, वेद प्रचार, अछूतोद्धार, कर्मणा वर्ण व्यवस्था, जात-पात का निषेध स्वदेश प्रेम-चरित्र निर्माण आदि विषयों पर आर्य समाज के दृष्टिकोण की सराहना की थी । कहने का आशय यह कि प्रेमचंद जी पर दयानन्द का गहरा प्रभाव था और आर्य समाज की संस्थाओं ने उनसे अपना घनिष्ट सम्बन्ध जोड़कर इस महान उद्देश्य को प्रचारित कराने में प्रेमचंद जी का लाभ उठाया था । गुरुकुल का उनसे गहरा रिश्ता है अतः आज परिसर में दोनों महापुरुषों को श्रद्धांजली अर्पित करते हुए परम संतोष का अनुभव हो रहा है हमें ।

दयानन्द और प्रेमचंद जीवन संग्राम में तटस्थ रहने वाले चिन्तक नहीं थे । दोनों ने साम्राज्यवादियों, पोगे पोपों और धर्माचार्यों तथा संस्कृति-विरोधियों के खिलाफ कलम का अचूक अस्त्र प्रयुक्त किया । दोनों महान् भारत के भविष्य द्रष्टा थे । दोनों शोषण और सामाजिक अत्याचार का विरोध जीवन भर कमर कस कर करते रहे ।

प्रसन्नता का विषय है कि प्रेमचंद के विशेषज्ञ विद्वान श्री मदन गोपाल

आज दयानन्द और प्रेमचंद पर व्याख्यान देने के लिए हमारे मध्य हैं। उन्होंने प्रेमचंद पर हिन्दी तथा अंग्रेजी में अधिकार पूर्वक लिखा है। हिन्दी में 'कलम का मजदूर: प्रेमचंद' तथा अंग्रेजी में 'मुंशी प्रेमचंद' उनकी बहुचर्चित कृतियां हैं। अमृतराय की पुस्तक 'कलम का सिपाही' से अधिक परिश्रम मदन गोपाल जी की पुस्तक में परिलक्षित होता है। आशा है, मदन गोपाल जी का यह व्याख्यान दयानन्द और प्रेमचंद को समझने में अधिक सहायक होगा। मैं श्री मदन गोपाल जी को हृदय से धन्यवाद देता हूं। विश्वविद्यालय के यशस्वी विद्वान् डा० विष्णुदत्त राकेश को इस व्याख्यान माला का सफलतापूर्वक संयोजन करने के लिए भूरिशः साधुवाद।

श्रद्धानन्द बलिदान-दिवस
23 दिसम्बर 1984

बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति

१

महर्षि दयानन्द के निधन के समय प्रेमचंद की आयु तीन वर्ष की थी। उनका असली नाम धनपत राय था। उनकी शिक्षा काशी में हुई, वही काशी जहां स्वामी दयानन्द का कड़ा विरोध हुआ था।

जब धनपतरात स्कूल में पढ़ रहे थे तब आर्य समाज ने उत्तर भारत के जनजीवन में एक नयी चेतना का संचार किया। महर्षि के समय हुए वाद-विवादों की गूंज अभी भी सुनाई दे रही थी। महर्षि के अकाट्य तर्कों ने धार्मिक अन्ध-विश्वासों और रूढ़ीवादी संकीर्णताओं की बुनियादें हिला दी थीं। उस युग के एक महान सुधारवादी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी पत्रिका हरिश्चन्द्र मैगजीन के सहायक सम्पादकों की सूचि में महर्षि जी का नाम भी सम्मिलित किया था। क्योंकि महर्षि जी की कुछ कृतियां उस पत्रिका में छपी थीं। जनता द्वारा नयी विचारधारा का स्वागत पुरातनपंथी संकीर्णताओं के मुँह पर कड़ा तमाचा था। प्रेमचंद ही शायद ऐसे प्रथम साहित्यकार थे जिन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से महर्षि का संदेश घर-घर पहुंचाया। अपने सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण वह जल्द ही जन-जन में लोकप्रिय हो गए और प्रमुख आर्य समाजी साहित्यकार के रूप में साहित्य गगन पर छा गए। उनकी कृतियों में प्रचारक की ध्वनि नहीं है, और न ही नारेबाजी है। इनके स्थान पर हमें सुधारवादी और शिक्षात्मक स्वर सुनाई देता है। उनके आर्य समाजी विचार थोथे नहीं लगते।

प्रेमचंद की सर्वप्रथम नौकरी अट्ठारह रुपये महीने पर चुनार के मिशनरी स्कूल में लगी थी। एक मैट्रिक पास को उन दिनों अट्ठारह रुपये वेतन मिलना बड़ी बात थी। प्रेमचंद ने स्वयं लिखा है कि नौकरी मिलते ही जब वह घर की ओर चले तो उनके पांव जमीन पर न पड़ते थे। परन्तु ईसाई मिशनरी स्कूल में उनका टिकना आसान नहीं था। वह कुछ ही महीने वहां काम कर पाये। चुनार में गोरे लोगों की पलटन तैनात थी। प्रेमचंद स्वतंत्र विचारों के व्यक्ति थे, बड़े स्वाभिमानी। गोरे सिपाहियों और स्थानीय युवकों के खेल में झड़प के सिलसिले में बात आगे बढ़ी और धनपतराय को स्कूल से निकाल दिया गया। जितने दिन रहे परिस्थिति अनुकूल नहीं थी। स्कूल तो मिशन-रियों का था ही। यहां उन पादरियों का भी अड्डा था जो ईसाईमत का प्रचार करते थे और गरीब किसानों तथा अछूतों को प्रलोभन देकर ईसाई धर्म की लपेट में ले रहे थे। यही कारण था कि इस छोटे से नगर में दो गिरजाघर

थे। आगे चलकर प्रेमचन्द ने अकाल और विपदा ग्रस्त लोगों के धर्म परिवर्तन के बारे में कहानियां भी लिखी।

कहानियों से पहले मैं उनके उपन्यासों को लेता हूं। प्रारंभिक तीन उर्दू कृतियां हैं "असरारे माबिद", "हम खुर्मा व हम सवाब" और "किशना"। "असरारे माबिद" अधूरा रहा। इसका हिन्दी में अनुवाद नहीं हुआ। "किशना" का भी नहीं हुआ (इस उपन्यास की तो अभी तक एक भी प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी है।) "हमखुर्मा व हम सवाब" की कुछ प्रतियां उपलब्ध हैं। इन तीनों में से कौन सी पुस्तक कब लिखी गई और कब प्रकाशित हुई इसके बारे में मतभेद हैं। "असरारे माबिद" बनारस की पाक्षिक उर्दू पत्रिका "आवाजे खल्क" में छपा। पहली किस्त 8 अक्तूबर, 1903 को, और आखरी किस्त फरवरी, 1905 को, लेखक का नाम था "नवाब राय इलाहाबादी"। प्रेमचंद इसे पूरा नहीं कर सके। आगे चलकर "किशना" के आधार पर 'गबन' लिखा। "हमखुर्मा व हम सवाब" का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ, यह था प्रेमा। "असरारे माबिद" का उन्होंने कहीं जिक्र नहीं किया। शायद इस लिए कि इस उपन्यास में विशेष फक्कड़पन तो है ही थोड़ी अश्लीलता भी है। इसकी पात्र रामकली एक महन्त के प्रेम पाश में फंसी है। बाजारू प्रवृत्ति की औरत है। महन्त से इतनी घनिष्ठता है कि घर के जेवर चुराकर उसे दे देती है। "हम खुर्मा व हम सवाब" में भी हमें रामकली का किरदार मिलता है। वहाँ वह विधवा है। महन्त जी वहां भी हैं। दोनों उपन्यासों में महन्त या पुजारियों की खिल्ली उड़ाई गयी है। ऐसे ही जैसे आर्य समाजी प्रचारक उनकी कुरीतियों का भंडा फोड़ कर दिखलाते थे। "हमखुर्मा व हम सवाब" आर्य समाजी रंग में रंगा है। तब प्रेमचंद की आर्य समाज में पूरी आस्था थी। वह समाज सुधार के इच्छुक थे। यह पुस्तक प्रेमचंद को प्रिय भी थी। उर्दू में इसके शायद तीन संस्करण निकले। हिन्दी में इसका उलथा कर 'प्रेमा' के शीर्षक से प्रकाशित करवाया। फिर बीस वर्ष बाद इसके 'प्लाट' में थोड़ा परिवर्तन कर इसे 'प्रतिज्ञा" के नाम से छपवाया।

उपन्यास का नायक अमृतराय स्वयं प्रेमचंद का मुखपात्र है। आरंभ में प्रेमचंद की आकांक्षा थी वकील बनने की। स्वयं वकील नहीं बने, परन्तु अमृतराय को वकील का जामा पहनाया। यही नहीं अमृतराय का एक विधवा से विवाह भी करवाया। हिन्दी उपन्यास में यह नयी बात थी। स्वयं प्रेमचंद ने भी एक बाल विधवा से विवाह किया। महर्षि ने विधवाओं के लिए नियोग

की प्रथा को पुनर्जीवित करने का प्रचार किया था। परन्तु कितने ही आर्य समाजियों ने विधवा विवाह का प्रचार किया। महर्षि जी ने इसका विरोध नहीं किया। यही नहीं आर्य मेसेंजर में विधवाओं के विवाह संबंधी विज्ञापन भी छपते थे। महर्षि जी ने उन्हें देखा था।

"हमखुर्मा व हम सवाब" उपन्यास के नायक अमृतराय ने प्रचारक धनुषधारी का व्यख्यान सुना। इतने प्रभावित हुए कि कुछ अंश भी नोट कर लिए। जब अमृतराय ने अपने मित्र दाननाथ को बतलाया कि उसने धनुषधारी का व्याख्यान सुना था तो दाननाथ ने व्याख्यान का विषय पूछा। अमृतराय ने कहा—"जाति की उन्नति के सिवा दूसरी कौन सी बात हो सकती थी? लाला साहब ने अपना जीवन इसी काम के हेतु अर्पण कर दिया है। आज ऐसा सच्चा देशभक्त और निष्काम जाति सेवक इस देश में नहीं है। यह दूसरी बात है कि कोई उनके सिद्धांतों को माने या न माने। मगर उनके व्याख्यानों में ऐसा जादू होता है कि लोग आप ही आप खिचे चले आते हैं। मैंने लाला साहब के व्याख्यानों के सुनने का आनन्द कई बार प्राप्त किया है। मगर आज की स्पीच में तो बात ही और थी। ऐसा जान पड़ता है कि उनकी जबान में जादू भरा है। शब्द वही होते हैं जो हम रोजमर्रा काम में लाया करते हैं। विचार भी वहीं होते हैं जिनकी हमारे यहां प्रतिदिन चर्चा रहती है। मगर उनके बोलने का ढंग कुछ ऐसा अपूर्व है कि दिल को लुभा लेता है।"

अमृतराय बह गये। आदर्श के नाम पर किसी भी विधवा से विवाह का संकल्प किया।

जब इस तरह का संदेश उनकी मंगेतर प्रेमा के पिता बदरी प्रसाद के पास पहुंचा तो उन्होंने अमृतराय को लिखा—"हमने सुना है कि अब आप सनातन धर्म को त्याग करके ईसाइयों की उस मंडली में जा मिले हैं जिसको लोग भूल से सामाजिक सुधार सभा कहते हैं। इसलिए अब हम अति शोक के साथ कहते हैं कि हम आपसे कोई बात नहीं कर सकते।" अमृतराय को धक्का लगता है। संघर्ष था देशभक्ति और आत्मस्वार्थ के बीच। लेखक के अनुसार देशभक्ति ने आत्मस्वार्थ को परास्त कर दिया। अमृतराय ने बदरी प्रसाद को लिखा—"कृपा पत्र आया। पढ़कर बहुत दुख हुआ। आपने मेरी बहुत दिनों की बंधी हुई आशा तोड़ दी। खैर, जैसा आप उचित समझें वैसा करें। मैंने जब से होश संभाला है तब से मैं बराबर सामाजिक सुधार का पक्ष करता हूं।

मुझे विश्वास है कि हमारे देश की उन्नति का इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। आप जिसको सनातन धर्म समझ बैठे हैं वह अविद्या और असभ्यता का प्रत्यक्ष स्वरूप है। आपका कृपाकांक्षी—अमृतराय।"

प्रेमा का विवाह अमृतराय के परममित्र दाननाथ से हो जाता है।

अमृतराय पूर्णा के पति के गंगा में डूब जाने पर उसे सहानुभूति दिखलाते हैं। दिल में बैठा सुधारक कहता है। पूर्णा का दूसरा विवाह होना चाहिए। पूर्णा को मनाया जाता है। जब विधवा विवाह का समाचार शहर में फैलता है तो बदरी प्रसाद के घर पर इसकी चर्चा होती है। विद्वान और धनाड्य लोग इकट्ठे होते हैं, शादी को रोकने के तरीकों पर बहस होती है।

पंडित भृगुदत्त : विधवा विवाह वर्जित है। कोई हमसे शास्त्रार्थ कर ले। वेद-पुराण में कहीं ऐसा अधिकार कोई दिखा दे तो हम आज से पंडिताई करना छोड़ दें।

बहुत से लोग चिल्लाए : हां हां जरूर शास्त्रार्थ हो।

लोगों को शास्त्रार्थ पर उतारू देखकर बदरी प्रसाद बोले : किस से करोगे शास्त्रार्थ ? मान लो वह शास्त्रार्थ न करे। तब ?

सेठ धूनीमल : बिना शास्त्रार्थ किए विवाह कर लेंगे ? थाने में रपट करा दूंगा।

ठाकुर जोरावर सिंह : कोई ठट्ठा है ब्याह करना। सिर काट दूंगा। लहू की नदी बह जाएगी।

राव साहब : बारात की बारात काट डाली जाएगी।

सैंकड़ों आदमी आकर डंट गये और आग में ईंधन लगाने लगे।

एक : जरूर से जरूर सिर गंजा कर दिया जाये।

दूसरा : घर में आग लगा देंगे। सब बारात जलभुन जायेगी।

तीसरा : पहले उस स्त्री का गला घोंट देंगे।

एक ओर विवाह की तैयारियां हो रही हैं। दूसरी ओर लठैतों के सरदार ठाकुर जोरावर सिंह अमृतराय को खत भेजते हैं। लिखा था : हमने सुना है कि आप विधवा ब्राह्मणी से विवाह करने वाले हैं। हम आपसे कहे देते हैं कि भूल कर भी ऐसा न कीजिएगा। नहीं तो आप जानें और आपका काम।'

अमृतराय प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। रसूख वाले हैं। विवाह सम्पन्न हो जाता है। विरोधी दल दांत-पीसता रह जाता है।

सेठ धूनीमल पंडित भृगुदत्त से कहते हैं : महाराज कुछ ऐसा यत्न

कीजिए कि इस दुष्ट का सत्यानाश हो जाए। कोई नामलेवा न बचे।

भृगुदत्त : सर्वथा नाश न कर दूं तो ब्राह्मण नहीं। आज के सातवें दिन उनका नाश हो जाएगा।

सेठ जी : द्रव्य जो लगे बेखटक कोठी से मंगा लेना।

भृगुदत्त : इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं। केवल पांच सौ ब्राह्मणों को प्रतिदिन भोजन कराना होगा।

एक ओर अंधविश्वास और अविद्या का वातावरण है दूसरी ओर एक ब्राह्मणी विधवा का एक क्षत्रीय अविवाहित पुरुष से विवाह, अन्तजातीय सीमाओं को लांघ कर प्रेमचन्द ने अन्तर्जातीय विवाह का प्रचार किया।

अमृतराय और पूर्णा के विवाह के बाद भी प्रेमा के हृदय में अमृतराय की मूर्ति ज्यों की त्यों रही। यह बात दान नाथ को खटकी। दान नाथ को अमृत-राय से इतनी ईर्ष्या थी कि वह अमृतराय को मारने चला। प्रेमा ने पूर्णा को सावधान किया। परिणाम यह हुआ कि दान नाथ और पूर्णा एक दूसरे को गोली का निशाना बना देते हैं। प्रेमा विधवा हो जाती है। तब प्रेमचन्द अमृतराय का विवाह विधवा प्रेमा से करवा देते हैं। यह समाज सुधार और देशोद्धार के हित में है। देशोद्धार की भावना अगले उपन्यास 'जलवाए ईसार', हिन्दी में 'वरदान', में भी है। इस उपन्यास के नायक की माँ सुवामा अष्टभुजी देवी से वरदान मांगती है। देवी की उसके कान में आवाज आती है—सुवामा मैं तुम से बहुत खुश हूं। माँग क्या मांगती है।

मैं जो कुछ माँगूंगी, क्या देवी जी देंगी ?

हां, मिलेगा।

मैंने बड़ी तपस्या की है। इसके लिए भारी वरदान माँगूंगी।

क्या लेगी ? कुबेर का धन ?

नहीं।

इन्द्र का बल ?

नहीं।

सरस्वती की विद्या ?

नहीं।

संसार का सबसे उत्तम पदार्थ मांगती है।

वह क्या है ?

सपूत बेटा जो कुल का नाम रोशन करे ?

नहीं ।

जो मां बाप की सेवा करे ?

नहीं ।

जो विद्वान और बलवान हो ?

नहीं ।

फिर सपूत बेटा किसे कहती है ?

जो अपने देश का उपकार करे ।

इस उपन्यास का नायक सुवामा का बेटा प्रतापचन्द है जो संन्यास लेकर बालाजी का नाम ग्रहण करता है ।

कुछ समालोचकों ने बालाजी का आधार स्वामी विवेकानन्द बतलाया है । इस धारणा का मुख्य कारण यह है कि जिस समय वरदान लिया जा रहा था उन्हीं दिनों प्रेमचन्द ने विवेकानन्द पर एक लेख 'जमाना' में छपवाया था । स्वामी विवेकानन्द द्वारा लिखी गयी किसी पुस्तक का उर्दू अनुवाद भी 'अदीब' में छपवाया था ।

परन्तु बालाजी का चरित्र विवेकानन्द पर नहीं स्वामी दयानन्द पर ढाला गया है··· 'अभी बहुत दिन नहीं गुजरे कि प्रतापचन्द एक गुमनाम आदमी था । आज उसका नाम बच्चे-बच्चे की जबान पर है । क्या उसके पास कारूं का खजाना था ? पनघट पर जब औरतें कूल्हों पर घड़े रखे पानी के लिए आती हैं तब बालाजी ही के चर्चे होते है और उन्हीं के जस गाये जाते हैं । अनाज के खेतों में उन्हीं की बड़ाई होती है । यही कौमी खिदमतगार का इनाम है । कलकत्ता में जब वह गये फूलों की बरसा हुई । हजारों मन फूल पैरों तले रौंद डाले गये । उस दिन मंदिर में देवताओं को फूलों की बास न मिली । रंगीन मिजाजों के गले में फूलों के गजरे न दिखाई दिये ···· । जब वह भागीरथी के किनारे पानी में सूर्यास्त की बहार देख रहे थे तो कई औरतें पानी भरने आयीं और घड़ों को पानी में घुमा-घुमाकर बातें करने लगीं ।

एक ने कहा : बहन तूने सुना नहीं बालाजी आये हैं ।

दूसरी बोली : हमारे ऐसे भाग कहां जो उनके दर्शन मिलें ।

तीसरी बोली : तू चलने पर राजी हो तो मैं तेरे साथ चलूं । वह आज अपनी गौशाला देखने आयेंगे । कौन दूर है । गऊओं के लिये खली और दाना भी ले जाना । एक पंथ दो काज हो जाएंगे ।

चौथी बोली : ऐसा न करेंगी तो बड़ा पाप होगा। देख जब से इनका गौशाला खुला है लड़कों को दोनों वक्त दूध पीने को मिल जाता है नहीं तो रूखी रोटियों को तरसते थे।

आगे लिखा है : बालाजी ने गांव-गांव में गौशाले खुलवा दिये। उनका सिद्धांत था कि हमारी कौमी तबाही और जवाल का असली सबब हमारा जिस्मानी जौफ और जातों की बेजा 'तफरीक है। हमारे बच्चे रुखी रोटियों को तरसते हैं और दूध-घी की खुशबू भी उनके नाक तक नहीं पहुंचने पाती··· आज तक जितने ऋषि और महात्मा हो गुजरे हैं उन सबने उस तफरीक के मिटाने की कोशिशें की हैं। महात्मा बुद्ध पहले बुजुर्ग थे जिन्होंने हिन्दुओं की पेशानी पर से इस बे-इंसाफी और जुल्म का दाग मिटाना चाहा और उन्हें बहुत कुछ कामयाबी भी हुई। उनके बाद श्री शंकराचार्य, श्री रामानुज, श्री चैतन्य, श्री रामकृष्ण, श्री स्वामी दयानन्द और स्वामी रामतीर्थ। सभी महात्माओं ने यही तालीम दी कि अपने भाइयों को अपना भाई समझो। नादान भाई भी तुम्हारा भाई है। उसे नीचा मत समझो। तुम्हारी मुक्ति एकता से होगी तफरीक से नहीं···।" यही था आर्य समाज का संदेश। यही था महर्षि दयानन्द का संदेश। इन दिनों प्रेमचन्द विधिवत आर्य समाज के सदस्य थे। फरवरी, 1913 में मझगांव से निगम को लिखा : "मेरे जिम्मे हमीरपुर आर्य समाज के दस रुपये बाकी हैं। बार-बार तकाजा हुआ है, मगर तंगदस्ती ने इजाजत न दी कि अदा कर दूं। आप अगर एफोर्ड कर सकें तो बरारास्त मेरे नाम से हमीरपुर आर्य समाज के सेक्रेटरी के नाम दस रुपये का मनीआर्डर कर दें। ममनून हूंगा। तकलीफ तो होगी मगर मेरी खातिर इतना सहना पड़ेगा क्योंकि यहां अब जलसा भी अनकरीब होने वाला है। मुकर्रर अर्ज यह है कि यह दस रुपये जरूर भेज देवें। मैंने जनवरी में अदा करने का इतमी वायदा किया है।"

एक महीने बाद फिर याद कराया : "अगर आपने हमीरपुर समाज के नाम दस रुपये न रवाना किये हों तो बराहे करम अब कर दीजिए क्योंकि मैं 14 मार्च को वहां जाऊंगा और तकाजा नहीं सहना चाहता।"

शायद यही जलसा था जिसके बारे में आर्य समाज प्रचारक मौलवी आलिम फाजिल श्री महेश प्रसाद ने लिखा है कि गर्मियों में दो सहयोगियों सहित वह महोबा गये। प्रेमचन्द वहां सब-डिपटी इंसपेक्टर तैनात थे। तीनों प्रेमचन्द के घर पर ठहरे। उनके अपने शब्दों में : हम तीनों का सत्कार उन्होंने

निरन्तर सात-आठ रोज तक जिस प्रेम और नम्रता के साथ किया था उसको हम कभी नहीं भूल सकते। जिन विषयों पर चर्चा हुई उनमें से दो इस प्रकार थे :

(1) आर्य समाज और उसके कार्य संबंधी बातें और···

(2) ईसाइयों के उस कार्य के बारे में जो उस समय केवल महोबा में ही नहीं बल्कि हमीरपुर जिले में भी हो रहा था। प्रेमचन्द ने बतलाया कि हमारी सामाजिक बुराइयों का ही फल हैं कि महोबा अथवा बुंदेलखंड के स्थानों में हिन्दुओं के अनेक लड़की-लड़के ईसाइयों के घेरे में पहुंच गये।

इन्हीं दिनों प्रेमचन्द ने इसी विषय पर एक कहानी लिखी। शीर्षक था, "खूने सफेद"। अकाल ग्रस्त लोग अपने घर-बार छोड़कर रोजी के लिए मीलों दूर जाते हैं। एक परिवार था जादोराम और देवकी का। उनका बच्चा साधोराम बुखार में पड़ा था। मां बाप काम में लगे हैं। बच्चा पादरी मोहनदास के खेमे की ओर आकर्षित होता है। पादरी उसे प्यार करता है, खाने को बिस्कुट और केले देता है। साधो बहुत प्रसन्न है। अगले दिन भी वहीं जाता है। मां-बाप उसे तलाश करते हैं, परन्तु निष्फल। वे निराश हो जाते हैं। उधर साधो को क्रिस्तान बनाकर पुणे भेज दिया जाता है।

अकाल के बाद इस क्षेत्र में खुशहाली आती है। जादोराम का परिवार सम्पन्न हो जाता है। उसका छोटा बेटा माधो और लड़की गिरि भी उसके काम में हाथ बंटाते हैं। एक दिन साधो साईकल पर चढ़कर आ धमकता है। मां-बाप की बाछें खिल जाती हैं। परन्तु ग्रामीण समाज ईसाई बेटे को नहीं स्वीकारता। साधो प्रायश्चित करने को तैयार है। नादानी से हुए कार्य के लिए दण्ड भोगने को भी तैयार है परंतु गांव के ठाकुर लोग लाल आंखें निकाल कर कहते हैं—"ठकुराइन! बिरादरी की तो तुम खुद मर्यादा करती हो। लड़का चाहे किसी रास्ते पर जाए, लेकिन बिरादरी चूं तक न करे। ऐसी बिरादरी कहीं और होगी। हम साफ-साफ कहे देते हैं कि अगर यह लड़का तुम्हारे घर में रहा तो बिरादरी भी बता देगी कि वह क्या कर सकती है।

साधो को छुआछूत और खाने-पीने के बारे में सलाह दी जाती है। मां-बाप निस्सहाय हैं। साधो तीक्षण शब्दों में कहता है, "क्या मान लूं? यही कि अपनों में गैर बनकर रहूं, अपमान सहूं। मिट्टी का घड़ा भी मेरे छूने से अशुद्ध हो जाए। न। यह मेरे किये न होगा। मैं इतना निर्लज्ज नहीं हूं।"

आगे चलकर वह कहता है—"मैं अपने घर में रहने आया हूं। अगर यह नहीं है तो मेरे लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि जितनी जल्दी

हो सके यहां से भाग जाऊं । जिनका खून सफेद है उनके बीच में रहना व्यर्थ है । और साधो बाईसिकिल पर चढ़ कर वहीं जाता है जहां से तंग होकर वह आया था । उसी क्षेत्र में जहां कोई अपना न था ।

प्रेमचन्द ईसाइयों द्वारा प्रचार का विरोध करते थे । उनका दृष्टिकोण वही था जो आर्य समाज का । दयानारायण निगम एक उर्दू साप्ताहिक निकालना चाहते थे । प्रेमचन्द ने महोबा से लिखा : हफ्तेवार का नोटिस आपने निकाल ही दिया । जरा तबियत तो अच्छी होने देते । देखिये क्या कामयाबी होती है । आपका हफ्तेवार कामरेड के नमूने का होना चाहिए··· नाम हिंदू मौजू था । शायद इस नाम का कोई परचा पंजाब से निकलने लगा है ।···मगर (आपके) अखबार का नमूना कामरेड ही हो, पालिसी हिंदू । अब मेरा हिंदुस्तानी कौम पर ऐतबार नहीं रहा और उसकी कोशिश फजूल है ।"

—०—

२

महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि पांच हजार वर्ष पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई भी मत न था । वेदों से विमुख होने के कारण ही महाभारत का युद्ध हुआ । अज्ञान और अंधकार के बढ़ने से लोग भ्रमयुक्त होकर मनमानी करने लगे । ईसाई प्रचारक भारत के लोगों को धड़ाधड़ ईसाई बना रहे थे । स्वामी दयानन्द ने उन्हें ललकारा । शास्त्रार्थ हुए । शास्त्रार्थ तो कट्टरपंथी मूर्तिपूजा के समर्थकों, ईसाइयों और मुस्लिम विद्वानोंसे भी हुये । महर्षि का एक लक्ष्य था ईसाई मत का विरोध । ईसाई मत विदेशी सत्ता का भी प्रतीक था ।

कुरान का कोई हिन्दी संस्करण नहीं था । इसलिए महर्षिजी ने विशेष प्रयत्न करके इसका अनुवाद करवाया । सत्यार्थ प्रकाश के पहले संस्करण में इस्लाम के बारे में समुल्लास नहीं था । यह दूसरे संस्करण में दिया गया । मुसलमानों द्वारा स्वामीजी का विशेष विरोध नहीं हुआ । जब लाहौर में ब्रह्मो समाज के अनुयाइयों ने उन्हें समर्थन देने से इनकार कर दिया तो मुस्लिम डाक्टर खान बहादुर रहीम खान ने उनके ठहरने का प्रबंध किया । अमृतसर में जिस मकान में आर्य समाज की नींव रखी गयी वह मियां जानमुहम्मद का

था। सर सैयद अहमद के घर पर स्वामीजी ने शास्त्रार्थ किया। सर सैयद ने अपने घर पर भोज के लिए निमंत्रण भी दिया। यह स्वीकारा नहीं गया। इसके कारणों की बात आगे होगी। निधन के समय भी उनका उपचार एक मुस्लिम डाक्टर अलीमर्दन खान कर रहे थे।

यह कहना अनुचित न होगा कि उन दिनों हिन्दु और मुसलमानों के बीच सौहार्द था। दयानन्द का विशेष प्रहार ईसाई मत पर था। समाज सुधार आर्य धर्म के प्रचार का मुख्य अंग था और समाज सुधार अप्रत्यक्ष रूप में राष्ट्र को विदेशी सत्ता के विरुद्ध तैयार करना था। आगे चलकर आर्य समाज के समर्थकों की राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही। अपनी पुस्तक 'दि सन आफ इंडिया' में ए. डी. रेनकर्ट ने लिखा है कि बंगाल की 1905 की क्रान्ति महर्षि दयानन्द की आर्य समाज की धार्मिक राष्ट्रीयता का परिणाम था। संयुक्त प्रान्त (आज का उत्तर प्रदेश) और मध्य प्रदेश जैसे प्रान्तों में आर्य-समाज ही राजनीतिक राष्ट्रीयता का केन्द्र बनी। सच तो यह है कि बीसवीं शताब्दि के आरम्भ में आर्यसमाजी भारी संख्या में राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े। पंजाब गवर्नर डैंजिल इबटसन ने लिखा है कि प्रांत के प्रत्येक जिले के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेटों ने उन्हें बतलाया था कि वहाँ की आर्यसमाजें ही विद्रोह का गढ़ बनी थीं। इबटसन के उत्तराधिकारी माइकल ओडवायर ने भी कहा था कि "हालांकि हिंदु जनसंख्या का पांच प्रतिशत से अधिक भाग आर्यसमाज में नहीं है फिर भी (1907 से 1918 तक) राजद्रोह से संबंधित लोगों में से अधिकांश आर्य समाजी ही थे।" लाला लाजपतराय, अजीतसिंह, भाई परमानंद, श्रद्धानंद, राजा महेन्द्र प्रताप, इन्द्र विद्यावाचस्पति, एम. जी. रानाडे, सत्यानंद ढींगड़ा इत्यादि कितने ही राष्ट्रवादी आर्यसमाज के अनुयायी थे।

इनमें से कितने ही लेखक थे परन्तु साहित्यकार केवल प्रेमचन्द थे। सरकारी नौकर होते हुए भी वह राष्ट्रवादी थे। उन्होंने "सोजे वतन" की भूमिका में लिखा : "हर एक कौम का इल्मीअदब अपने जमाने की सच्ची तस्वीर होता है। जो खयालात कौम के दिमागों को मुतहर्रिक करते हैं और जो जजबात कौम के दिलों में गूंजते रहे वह नज्म व नसर के सफहों में ऐसी सफाई से नजर आते हैं जैसे आइने में सूरत। हमारे लिटरेचर का इबतिदाई दौर वह था कि लोग गफलत के नशे में मतवाले हो रहे थे। इस जमाने की अदबी यादगार वजुज आशिकाना गजलों और चन्द किस्सों के और

कुछ नहीं। दूसरा दौर उसे समझना चाहिये जब कौम के नये और पुराने खयालात में जिन्दगी और मौत की लड़ाई शुरू हुई और तमददुन की तजवीज सोची जाने लगीं। इस जमाने के किस्से व हिकायात ज्यादातर इस्लाह और तजदीद ही का पहलू लिए हुए हैं। अब हिंदुस्तान के कौमी खयालात ने बलोगियत के जीने पर एक कदम और बढ़ाया है और हुब्बे वतन के जजबात लोगों के दिलों में सर उभारने लगे हैं। क्योंकर मुमकिन था कि इसका असर अदब पर न पड़ता। ये चन्द कहानियां इस असर का आगाज़ हैं और यकीन है ज्यों-ज्यों हमारे ख्याल रकीह होते जाएंगे, इस रंग के लिटरेचर को रोज अफ्जूं फरोग होता जाएगा। हमारे मुल्क को ऐसी किताबों की अशद जरूरत है जो नई नसल के जिगर पर हुब्बे वतन की अज़मत का नक्शा जमाये (नवाबराय)।"

देश प्रेम की इन पाँच कहानियों को विद्रोहात्मक माना गया। पुस्तक पर प्रेस का नाम नहीं छपा था। इसलिए सरकार की सी. आई. डी. ने पूछताछ की। पता चला कि 'नवाब राय' तो धनपत राय का कलमी नाम है और धनपतराय महोबा में डिप्टी इंसपेक्टर आफ स्कूल्स तैनात है। धनपतराय की तलब हुई। रातोंरात सफर कर कलक्टर के यहां पेशी हुई। उसकी मेज पर 'सोजे वतन' की एक प्रति पड़ी थी। कलक्टर ने कहा इन कहानियों में राजद्रोह भरा पड़ा है। मुगल राज होता तो तुम्हारे हाथ काट दिये जाते। अंग्रेजी राज की बरकत है कि तुम्हें छोड़ दिया जाता है। स्टाक में सारी पुस्तकें सरकार के हवाले कर दी गयीं। इन्हें नष्टकर दिया गया।

हुक्म हुआ आगे से लिखना बन्द और किसी लेख के प्रकाशन से पहले सरकारी अनुमति आवश्यक है। धनपतराय ने अपने मित्रों को बतलाया कि बच गये वरना मांडले की हवा खानी पड़ती। उन्होंने निगम को लिखा कि भविष्य में सरकारी अनुमति लेनी होगी विषय कुछ भी हो। चाहे लेख हाथी दांत पर ही क्यों न लिखा हो। इस पर निगम ने प्रेमचन्द के कलमी नाम का सुझाव दिया।

'जलवाए ईसार' (वरदान) इन्हीं दिनों लिखा जा रहा था। इस पर नाम नवाब राय ही दिया गया। हम देख चके हैं कि सुवामा की इच्छा है कि उसका पुत्र प्रतापचन्द्र देशोद्धार करे और यह कि नायक का चरित्र दयानन्द पर ढाला गया है। आगे चलकर प्रेमचन्द ने इस तरह की कहानियां भी लिखी जिनसे स्वाभिमान और राष्ट्रीयता की भावना उजागर हो। जलियांवाला

हत्याकांड के बाद प्रेमचन्द के दिल पर एक भारी बोझ था। गोरखपुर में गांधी जी का भाषण सुना और अपनी नौकरी से त्याग पत्र दे दिया। बाद में लेखन के माध्यम से राष्ट्रीय संग्राम में अपना योगदान दिया। उन्हें गांधी युग का प्रमुख साहित्यकार माना जाता है। उनमें राष्ट्रीयता की भावना प्रबल थी, इतनी प्रबल कि उनकी विचारधारा भी बदली। महात्मागांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने खिलाफत आन्दोलन को अपना समर्थन दिया। प्रेमचन्द ने भी इसी नीति का समर्थन किया। मौलाना मुहम्मद अली और शौकतअली की प्रशंसा की और उनकी तुलना राम-लखन की जोड़ी से की। दस वर्ष पूर्व हिन्दुस्तानी कौम में आस्था न रखने वाले प्रेमचन्द अब राष्ट्रीय विचारधारा का अनुसरण कर रहे थे। इस विचारधारा का आधार था हिन्दू, मुस्लिम मतभेदों को दूर करना।

महर्षि दयानन्द के जीवन-काल में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच विशेष मतभेद नहीं थे। जब महर्षिजी से पूछा गया कि क्या एक मुसलमान आर्य हो सकता है तो उन्होंने कहा हां। परन्तु जब झेलम आर्य समाज एक मुस्लिम का शुद्धीककरण करने जा रही थी तो महर्षिजी ने उन्हें कहा अभी अवसर नहीं आया है।

1877 में, जब महर्षिजी आगरा में थे तब मिर्जापुर के एक मुसलमान ने गाय की कुर्बानी की घोषणा की। वहां के हिन्दुओं ने कुर्बानी को रोकने का प्रयत्न किया। इसी मंशा का मजिस्ट्रेट से हुक्म दिलवाया। वाद-विवाद चला। इस बीच एक दूसरा मजिस्ट्रेट आ गया। उसने आदेश दिया कि गाय उस मुसलमान की निजी सम्पत्ति है। वह जैसा चाहे कर सकता है। यदि किसी को आपत्ति है तो 5 सप्ताह के भीतर अदालत जा सकता है।

वाद-विवाद ने जोर पकड़ा। भारतेन्दु ने अपनी पत्रिका में भर्त्सना की और कहा कि बहुसंख्यक जाति की उपेक्षा कर अल्पसंख्यक जाति को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। तभी महर्षिजी ने गोवध के विरुद्ध आन्दोलन चलाया। इन्हीं दिनों अंग्रेजों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच फूट की योजना बनायी। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के तुरन्त बाद अंग्रेज शासक मुसलमानों का दमन कर रहे थे। परन्तु बीस वर्षों बाद उन्होंने देखा कि हिन्दुओं में जनचेतना आ रही है। और इस पर अंकुश लगाने का एक ही मात्र तरीका था जनता में फूट डालना, हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच टकराव की स्थिति पैदा करना। एक्सपेंशन आफ ब्रिटिश इम्पायर में सैसीले ने इस सिद्धांत का विश्लेषण किया। एक अंग्रेज गवर्नर ने तो यहां तक कहा कि यदि उसकी दो बीवियां हों, एक

हिन्दू और दूसरी मुस्लिम, तो वह मुस्लिम बीवी को अधिक प्यार करेगा। इसी नीति के अन्तर्गत अलीगढ़ मुस्लिम कालेज और बाद में विश्वविद्यालय की नींव पड़ी। यहां के प्रिंसिपल और अन्य नेताओं ने मुसलमानों को अलग कौम की परिभाषा दी।

एक समय सर सैयद अहमद खान ने कहा था भारतीय कौम से मेरा मतलब है दोनों हिन्दू और मुसलमानों से। मेरे लिए इस बात का बिल्कुल महत्व नहीं है कि किसी व्यक्ति का क्या धर्म है। क्योंकि धर्म हमें दिखलाई नहीं देता। जो दिखलाई देता है वह यह है कि हिन्दू हो या मुसलमान, सब एक ही देश में रहते हैं और एक ही राजा की प्रजा हैं। हमारे जीवन-स्रोत एक ही है और जब अकाल पड़ता है तो सब लोग साथ ही भुगतते हैं। यही कारण है कि मैं हिन्दुस्तान में रहने वाले दोनों हिन्दुओं और मुसलमानों को हिन्दू कहता हूं

उन्होंने यह भी कहा था कि काश ! मेरी एक ही आंख होती ताकि मैं हिन्दुओं और मुसलमानों को एक ही आंख से देख पाता। अंग्रेजों ने मुसलमानों को प्रोत्साहन देकर उन्हें उकसाया कि काउंसिल में उन्हें अलग से प्रतिनिधित्व मिले। सर आगा खान के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मंडल वायसराय से मिला। मुस्लिम लीग का गठन हुआ। हिदू-मुस्लिम एकता की बात करते-करते दोनों के बीच भेद-भाव बढ़ता गया और इसी के परिणाम-स्वरूप आगे चलकर देश का बंटवारा हुआ। इस बंटवारे की नींव महर्षिजी के जीवन काल में पड़ी थी। फिर भी समय-समय पर एकता के प्रयत्न होते रहे। पहले विश्वयुद्ध के दौरान हिन्दु और मुसलमान कंधे से कंधा मिलाकर खड़े थे। जलियांवाला हत्याकांड के बाद कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन चलाया। तब प्रेमचन्द ने मुहम्मद अली और शौकत अली भाइयों को रामलखन की जोड़ी कहा। जो बातें हिन्दू-मुस्लिम एकता के रास्ते में अड़चन बनती, उनका विरोध करना आवश्यक था। जब राजस्थान में मलकाना राजपूतों की शुद्धि का आन्दोलन चला और मुसलमानों ने बबेला मचाया तो प्रेमचन्द ने शुद्धि आन्दोलन के विरुद्ध एक कड़ा लेख लिखा। "इधर मैंने उर्दू लिखना बन्द कर रखा है। फुर्सत ही नहीं मिलती। लेकिन मलकाना शुद्धि पर एक मुखतसर सा मजमून लिख रहा हूं। मुझे इस तहरीक से सख्त इखतिलाफ है। तीन-चार दिन में भेजूंगा। आर्य-समाज वाले भिन्नाएंगे, लेकिन मुझे उम्मीद है कि आप मजमून को जमाना में जगह देंगे।"

"आर्य-समाज वाले भिन्नाएंगे।" ये शब्द उसी व्यक्ति के हैं जो

दस वर्ष पूर्व आर्य-समाज का विधिवत सदस्य था और जो हिन्दुस्तानी कौम नहीं, हिन्दू धर्म का समर्थक था। यह परिवर्तन समय के साथ आया था। प्रेमचन्द का अब प्रनत्न था कि हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के निकट आयें। उर्दू रिसालों में हिन्दी लेखकों के बारे में लिखा तो हिन्दी पत्रिकाओं में इस्लाम के महापुरुषों के बारे में। "नबी का नीति निर्वाह" "फातिहा।" माधुरी में "मंदिर और मस्जिद" कहानी लिखी। 1924 में "कर्बला" नाटक प्रकाशित किया। मुसलमानों ने आपत्ति की तो लिखा कि ख्वाजा हसन नजामी ने भगवान कृष्ण की जीवनी छापी। मैं इस्लाम के महा-पुरुषों के बारे में वैसा ही कुछ कर रहा हूं। प्रेमचन्द जानते थे कि हिन्दु मुस्लिम झगड़ों के पीछे अंग्रेजों का हाथ है।

"कायाकल्प में इस विषय पर विस्तार से लिखा। आगरा के हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच आये दिन झगड़े होते रहते हैं। छोटी-छोटी बातों पर दंगे-फिसाद हो जाते हैं। बस एक बहाना चाहिए। बनिये ने डंडी मारदी तो मुसलमान दुकान पर धावा बोल देते हैं। किसी जुलाहे ने हिन्दू के पानी के घड़े को छू दिया तो मुहल्ले में फौजदारी हो गई। सोहन सईद के कुत्तों में लड़ाई हो गई तो हिन्दू-मुस्लिम फिसाद। सैकड़ों आदमी घायल हो गये। दोनों ही जातियों के सिरफिरे मजहब के नाम पर दंगे के लिए तैयार हैं। सबेरे ख्वाजा साहिब जिलाधीश को सलाम करने जाते हैं और शाम को बाबू यशोदानन्द। दोनों ही अपनी-अपनी राजनीतिक भक्ति का राग अलापते हैं। ठाकुर द्वारे में ईश्वर कीर्तन की जगह मुस्लिम नबियों की निन्दा होती है मस्जिदों में नमाज की जगह हिन्दू देवताओं की दुर्गति। हिन्दुओं ने महावीर दल बनाया। मुसलमानों ने अलीगोल सजाया।"

जब पंजाब से आगारा आये एक मौलवी साहिब ने गाय की कुर्बानी देने की सलाह दी तो हिन्दुओं में खलबली सी मच गयी। यशोदानन्द मुसलमानों के नेता ख्वाजा साहब के पास गये और पूछा कि क्यों वहां गाय की कुर्बानी की जा रही है जहां आज तक कभी नहीं हुई। क्यों नयी रस्म निकाली जा रही है। ख्वाजा साहब उत्तर देते हैं कि "कुर्बानी (करना) हमारा हक है। अभी तक हम आपके जज़बात का लिहाज करते थे। हम अपने हकों को भूल गये थे। जब आप लोग अपने हकों के सामने हमारे जज़बात की परवाह नहीं करते तो हम क्यों आप के जज़बात की परवाह करें। मुसलमानों की शुद्धि करने का आपको हक हासिल है लेकिन 500 वर्षों में आपके यहां शुद्धि की कोई मिसाल नहीं मिलती।"

प्रेमचन्द का मुखपात्र चक्रधर कहता है "अहिंसा का सिद्धांत गऊओं के लिए नहीं मनुष्यों के लिए भी तो है। एक गाय की कुर्बानी बचाने के लिए सैकड़ों पुरुषों की कुर्बानी क्यों दी जाए?" चक्रधर की सूझबूझ के परिणाम-स्वरूप गाय को छोड़ दिया जाता है। ख्वाजा महमूद कहते हैं, "काश तुम जैसे समझदार तुम्हारे और भाई होते, मगर यहाँ तो लोग हमें मलेच्छ कहते हैं। यहां तक कि हमें कुत्तों से भी नाकिस समझते हैं। उनकी थालियों में कुत्ते खाते हैं, पर मुसलमान उनके गिलास में पानी नहीं पी सकता। अब कुछ-कुछ उम्मीद हो रही है कि शायद दोनों कौमों में इत्फाक हो जाये।"

चक्रधर का मत है: "मैं तो नीति ही को धर्म समझता हूं और सभी सम्प्रदायों की नीति एक सी हैं। अगर अंतर है तो बहुत थोड़ा। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध सभी सत्कर्म और सद्विचार की शिक्षा देते हैं। हमें कृष्ण, राम, ईसा, मुहम्मद, बुद्ध सभी महात्माओं का समान आदर करना चाहिए। बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिन्दू ''संसार का भावी धर्म, सत्य न्याय और प्रेम के आधार पर बनेगा।"

महर्षिजी ने सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखा था: "इस ग्रंथ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है। अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान से असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाये किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है। इसलिए वह सत्य को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए विद्वान का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दे। पश्चात वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़कर असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रंथ में ऐसी बात नहीं रखी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है किन्तु जिस मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य

का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।' कलकत्ता प्रवास के दिनों में केशवचन्द्र सेन ने महर्षिजी को परामर्श दिया था कि जनता तक पहुंचने के लिए उन्हें हिन्दी को अपनाना चाहिए। महर्षिजी ने उस परामर्श को ग्रहण किया। सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे संस्करण की भूमिका में उन्होंने लिखा : "जिस समय मैंने यह ग्रंथ बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन-पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्म भूमि की भाषा गुजराती होने के कारण मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था। इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है। इसलिए इस ग्रंथ को भाषा व्याकरण अनुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है।"

महर्षिजी के निधन के बाद तत्कालीन संयुक्त प्रांत में हिन्दी का खूब प्रचार हुआ। देवनागरी लिपि के प्रयोग के लिए एक विज्ञापन सरकार को दिया गया।

धनपतराय का जन्म कायस्थ परिवार में हुआ था। और कायस्थ लोगों पर फरसी और उर्दू का अच्छा चयन था। राजभाषा उर्दू जीविका का साधन भी था। यह स्वाभाविक था कि वे उर्दू फारसी पढ़ते। परन्तु उन्हें हिन्दी से भी प्यार होगा, क्योंकि मैंट्रिक की तैयारी से पूर्व उनके अपने अनुसार एक बेलदार उनसे हिन्दी पढ़ने आया करता था। हिन्दी का ज्ञान होगा तभी तो उसे पढ़ा सकते। 1904 में उन्होंने हिन्दी की एक विशेष परीक्षा पास की। 'हम खुर्मा व हम सवाब' के प्रकाशन के तुरन्त बाद इसका हिन्दी रूपान्तर 'प्रेमा' के नाम से प्रकाशित करवाया। जिन दिनों प्रेमचन्द कानपुर में स्कूल मास्टर थे निगम के साथ वह बाल मुकुन्द गुप्त को मिलने रेलवे स्टेशन पर गये। गुप्तजी उन दिनों भारत मित्र का सम्पादन कर रहे थे। वह उर्दू के जाने माने लेखक और सम्पादक रह चुके थे और लाहौर का कोहिनूर छोड़कर हिन्दी में आये थे। वह जमाना में भी लिखते थे। प्रेमचन्द उन के व्यक्तित्व से प्रभावित थे। फिर आर्य समाज जोर पकड़ रहा रहा था। वरदान में मुंशी संजीवन लाल अपनी पुत्री बिरजन से कहते हैं कि 'बेटी तुम तो संस्कृत पढ़ती हो। जिस पुस्तक की तुम बात करती हो वह तो भाषा में है।'

बिरजन उत्तर देती है 'तो मैं भी भाषा ही पढ़ूंगी। इसमें कैसी अच्छी अच्छी कहानियां हैं। मेरी किताब में तो एक कहानी भी नहीं है।'

तब तक हिन्दी जीविका का साधन नहीं बन पाई थी। फिर भी प्रेमचन्द की इस भाषा में रुचि थी। मई, 1910 में निगम से पूछते हैं : 'हिन्दी पर्चे का क्या हश्र हुआ ? यानी उसकी तजवीज खटाई में पड़ गयी या बाकी है। निकलने वाला हो तो हिन्दी में लिखने की आदत डालूं।' आदत डालने से स्पष्ट है कि वह हिंदी लिखते थे। बस आदत नहीं थी। चार वर्ष बाद: 'प्रताप के असरार से मजबूर होकर एक मुखतसर सा किस्सा हिन्दी में उसके विजयादशमी नवम्बर के लिए लिखा है। हिन्दी लिखनी तो आती नहीं मगर कुछ कलम तोड़ मोड़ दिया है।

शीघ्र ही हिन्दी में उन्हें मान्यता मिली। प्रेमचन्द ने निगम को लिखा 'उर्दू में अब गुजर नहीं है। यह मालूम होता है कि बालमुकुन्द गुप्त मरहूम की तरह मैं भी हिन्दी में जिन्दगी सर्फ कर दूंगा। उर्दू नवीसी में किस हिन्दू को फैज हुआ जो मुझे हो जायेगा।' जो मान्यता 'सप्त सरोज' और 'नवनिधि' को मिली वह उर्दू में 'प्रेम पचीसी' को नहीं मिल पाई। फिर भी प्रेमचन्द ने उर्दू में बाजारे हुस्न लिखा। गोशा-ए-आफियत और चौगाने हस्ती। परन्तु बाजार हुस्न बाद में छपा। इसका हिन्दी रूपान्तर सेवासदन पहले छपा। ऐसे ही गोशा-ए-आफियत बाद में छपा। इसका हिन्दी रूपान्तर पहले। रंगभूमि भी पहले हिन्दी ही में छपी, हालांकि यह भी पहले उर्दू में लिखी गयी थी। क्योंकि कथानक में भारी परिवर्तन कर दिया था इसलिए चौगाने हस्ती का उर्दू रूपान्तर इकबाल सहर हितगामी से मुआवजा देकर करवाया। उर्दू में लिखा हुआ यह प्रेमचन्द का आखरी उपन्यास था। 'कायाकलपक,' 'गबन', 'निर्मला,' 'कर्मभूमि', 'गोदान', 'मंगल सूत्र' पहले हिन्दी में लिखे गये। प्रेमचन्द की बड़ी ख्याति हुई, धूम मच गई। उन्हें उपन्यास सम्राट की संज्ञा दी गयी।

३
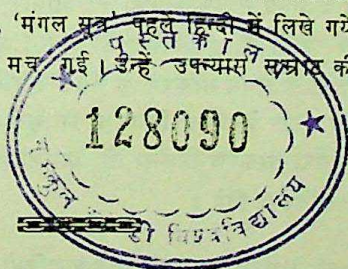
उन्नीसवीं शताब्दि में गुजरात काठियावाड़ में दो महापुरुषों ने जन्म लिया। एक ने मौरवी के निकट, दूसरे ने पोरबन्दर में। दोनों स्थान एक दूसरे से बहुत दूर नहीं है। ये दो महापुरुष थे महर्षि दयानन्द और महात्मा मोहनदास कर्मचंद गांधी। दोनों में बड़ी समानता है। एक ने जिस कार्य को जहां छोड़ा दूसरे ने उसे आगे चलाया। स्वदेशी का प्रचार स्वामी दयानन्द ने भी किया था। गांधी जी ने इसे जन आन्दोलन का रूप दिया। महर्षिजी ने केशव चंद्र सेन की सलाह पर संस्कृत को त्याग हिन्दी को अपनाया, गांधीजी ने हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचार किया। स्वामी दयानन्द ने अंग्रेजी सरकार द्वारा नमक और चीनी पर टैक्स की कड़ी आलोचना की। गांधी जी ने नमक सत्याग्रह आन्दोलन चलाकर ब्रिटिश सरकार की जड़े हिला दीं। महर्षिजी ने स्त्रियों में पर्दे की प्रथा, उनमें अज्ञान तथा अविद्या और विभिन्न प्रकार की कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाई। गांधी जी ने महिलाओं को राष्ट्रीय संग्राम में पुरुषों का साझेदार बनाया। महर्षि ने छुआछूत के और अंधविश्वास के विरुद्ध लोगों को प्रेरित किया। गांधी जी ने अस्पृश्यता के विरुद्ध बड़ा भारी आन्दोलन चलाया। आज छुआछूत के विरुद्ध आन्दोलन के संदर्भ में हम प्रेमचन्द की भूमिका की चर्चा करेंगे।

महर्षि दयानन्द ने वर्णव्यवस्था का आधार, जन्म नहीं, कर्म बतलाया था और मानव जाति के हर व्यक्ति के समान अधिकारों पर बल दिया था। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण के समय उन्होंने तीन उच्च वर्णो और चौथे वर्ण के बीच इतना भेदभाव किया था कि शूद्रों को वेद पढ़ने की अनुमति नहीं थी। जब दूसरा संस्करण निकला तो इस भेदभाव को दूर कर चौथे वर्ण को भी समान अधिकार दिये।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों और कहानियों में जन्म आधारित वर्णव्यवस्था की कड़ी आलोचना की। चमार, भंगी, कुंजड़े, धोबी इत्यादि जातियों पर हो रहे अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई। चाहे वह अन्याय धर्म के ठेकेदारों द्वारा हो या जमींदारों या अफसर शाही द्वारा। वे अछूतों के लिए न्याय के पक्ष में और उनके आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए लड़ते रहे। उनकी अपनी पत्रिका

थी हंस। अगस्त, 1933 के अंक के कवर पर उन्होंने डा० भीमराव अम्बेडकर की तस्वीर छापी और लिखा 'आपने सतत उद्योग से अनेक परीक्षाएं पास करके विद्वता प्राप्त की है और यह प्रमाणित कर दिया है कि अछूत कहलाने वाली जातियों को किन्ही असाधारण उपकरणों से ईश्वर ने नहीं बनाया। इस समय आप विश्वविख्यात व्यक्तियों में हैं।' अछूतों पर समाज द्वारा अन्याय का आधार था धर्म के नाम पर मठाधीशों, महन्तों और पुजारियों की अनुमति प्रेमचंद ने अपनी आरम्भिक कृतियों से लेकर अन्त तक ऐसे ब्राह्मणों का मजाक उड़ाया। तेरह वर्ष की आयु में लिखी गई 'मेरी पहली रचना' में प्रेमचन्द ने दूर के रिश्ते में मामू के रोमांस का जिक्र किया है। अधेड़ उम्र तक अविवाहित, ये मामूं एक चमारिन पर लट्टू हो गये थे। नीच जात वालों ने मामू की वह पिटाई की कि वे भाग गये। यह व्यंग प्रेमचंद के छुआछूत का ही एक अंग था। अपने उपन्यास 'कर्मभूमि' में तो छुआछूत का विरोध एक जन आंदोलन का रूप धारण कर लेता है। उपन्यास का नायक, एक ऊंचे परिवार का युवक, अमरकान्त अपने पिता को छोड़कर बीस-पच्चीस चमारों की बस्ती में जाकर रहने लगता है। गंदे घरों में वह स्वयं झाड़ू लगाता है। गांव के चमारों को स्वच्छ जीवन की शिक्षा देता है। एक पाठशाला खोलकर वह बच्चों को पढ़ाता भी है। अमरकान्त के अनुसार शराब और मुर्दा गाय के मांस के सेवन के अतिरिक्त चमारों में ऐसी कोई बुराई नहीं है जिसके आधार पर उन्हें सवर्ण हिन्दू पतित कह सकें। गूदड़ चौधरी को छोड़ थोड़े ही ऐसे चमार थे जिनमें शराब पीने की क्षमता हो। हां मुर्दा गाय का मांस सब खाते थे। एक गाय की लाश को देखकर बच्चे खुशी से उछलने कूदने लगते हैं। अमरकान्त के दिल में उनके प्रति घृणा हो जाती है। सुधारवाद लुप्त सा हो जाता है और वह गांव से भाग खड़ा होना चाहता है। परन्तु अमरकांत को देखकर कुछ लोग गाय के मांस खाने का विरोध करते हैं। मुन्नी भी सत्याग्रह करती है। अंत में मांस खाने के विरोधियों की विजय होती है और मांस नहीं खाया जाता।

उधर नगर भी मंदिर प्रवेश आंदोलन चल रहा है। ठाकुर द्वारे में कथा हो रही है। ब्रह्मचारीजी ने देखा दरी से थोड़ी दूर जूतों के पास अछूत बैठे हैं। सवर्ण वाले कहते हैं कि अनर्थ हो गया। चमारों ने ठाकुर द्वारे में प्रवेश कर इसे भ्रष्ट कर दिया है। ब्रह्मचारी जी सहमत हैं। उन्हें अमरकांत

के पिता समरकांत का भी पूरा समर्थन प्राप्त है । समरकांत ने चमारों को मार भगाने के आदेश दिए । ब्रह्मचारी और सवर्णों के लिए जूते बनाने वाले चमार अपवित्र थे परन्तु उन द्वारा बनाये गये जूते पवित्र चीज थे । ब्रह्मचारी के हुक्म से लोगों ने पवित्र जूतों से अपवित्र चमारों की मरम्मत शुरू की । उधर अछूतों के समर्थक डंडों से जवाब देने वाले थे कि शांति कुमार ने स्थिति सम्भाल ली । वह ब्रह्मचारी को ललकार कर कहते हैं 'अंधभक्तों की आंख में धूल झोंककर यह हलवे बहुत दिन खाने को नहीं मिलेंगे, महाराज ! अब वह समय आ रहा है जब भगवान भी पानी से स्नान करेंगे, दूध से नहीं ।'

शांति कुमार ने अछूतों को ठाकुर जी के दर्शन के लिए उत्तेजित किया । मंदिर प्रवेश का प्रश्न अछूतों के लिए शायद इतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना उच्चवर्ग वालों के लिए । कुछ ने तो यहां तक कहा : 'अपना मंदिर लिये रहें । हमें क्या करना है' । परन्तु शांति कुमार के लिए मंदिर प्रवेश प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया है । वह अछूतों को उकसाते हैं. अछूत आगे बढ़ते हैं । ज्यों-ज्यों अछूत मंदिर के समीप आते जाते हैं उनकी हिम्मत टूटती जाती है । जिस अधिकार से वे वंचित रहे, उसके लिए उनके मन में कोई तीव्र इच्छा नहीं । वह विश्वास जो न्याय व ज्ञान से पैदा होता है वहां है । समूह की धौंस जमाकर विजय पाने की आशा ही उन्हें आगे बढ़ा रही है । वे ठाकुर द्वारे तक पहुंच जाते हैं । मौखिक युद्ध होता है । फिर डंडों द्वारा प्रहार । भगदड़ मच जाती है । शांति कुमार डंडा खाकर गिर पड़ते हैं । अब आम का प्रश्न बन जाता है । अछूत मंदिर के बाहर धरना देते हैं और मंदिर में दर्शनों के लिए जाने वालों का रास्ता बंद कर देते हैं । पुलिस बुलाई जाती है । गोली चलती है । चमार डटे रहते हैं, हालांकि उनका नेतृत्व करने वाले भाग खड़े होते हैं । नैना एक ऐसे नेता स्वामी आत्मानन्द के बारे में कहती है 'यह महाशय संन्यासी बनते हैं फिर भी इतने डरपोक । पहले तो गरीबों को भड़काया और जब मार पड़ी तो सबसे आगे भाग खड़े हुए ।'

अन्त में अमरकांत की बहन ने अछूतों का नेतृत्व संभाला । अब तो अमरकांत भी गोली नहीं चलवा सकते थे । अछूतों की विजय होती है । लाशें गंगा के किनारे जला दी जाती है और अगले दिन मंदिर प्रवेश होता है । एक बड़ा भारी समारोह होता है ।

प्रेमचन्द ने अछूतों के प्रश्न को नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं

के प्रकाश में देखने का प्रयत्न किया है । यदि अछूत मंदिर में प्रवेश करते हैं तो वास्तविक लाभ, अधिक आमदनी, तो मठाधीशों की होती है । उन्हीं मठाधीशों का जिन के बारे में नैना कहती है 'आधीरात तक इसी मंदिर में जुआ खेलते हो, पैसे पैसे पर ईमान बेचते हो, झूठी गवाहियां देते हो, द्वार द्वार भीख मांगते हो । फिर भी तुम धर्म के ठेकेदार हो । तुम्हारे तो स्पर्श से ही देवताओं को कलंक लगता है ।'

गूदड़ चौधरी को पूर्व जन्म के संस्कारों में बिलकुल विश्वास नहीं है । वह बेटे से कहता है 'यह सब मन को समझाने की बात है बेटा । जिसमें गरीबों को अपनी दशा पर सन्तोष रहे और अमीरों के राग रंग में किसी तरह की बाधा न पड़े । लोग समझते रहें कि भगवान ने हमको गरीब बना दिया, आदमी का क्या दोष । पर यह कोई न्याय नहीं है कि हमारे बाल बच्चे तक काम में लगे रहे और पेट भर भोजन न मिले और एक एक अफसर को दस दस हजार की तलब मिले । दस तोड़े रुपये गधे से भी न उठें ।'

प्रेम चन्द अछूतों के लिए मंदिरों के दरवाजे खुलवा देते हैं परन्तु वह मानते हैं कि अछूतों के साथ खान-पान और ब्याह शादी के रास्ते में कठिनाइयां हैं । जब हिन्दुओं में एक साथ बैठकर खाने-पीने की प्रथा नहीं है तो अछूतों के साथ कैसे हो सकती है । अमरकांत को खान-पान में केवल एक परम्परागत प्रथा की झलक मिलती है । वह गूदड़ चौधरी से कहता है : 'यह तो अपनी-अपनी प्रथा है । चीन एक बहुत बड़ा देश है । वहां बहुत से आदमी बुद्ध भगवान को मानते हैं । उनके धर्म में किसी जानवर को मारना पाप है । इसलिए वे लोग मरे हुए जानवर ही खाते हैं । कुत्ते, बिल्ली, गीदड़, किसी को भी नहीं छोड़ते । तो क्या वह हम से नीच है ?' स्वयं उत्तर देता है : कभी नहीं ।

स्वयं महर्षि दयानन्द ने सर सैयद अहमद खान के यहां से भोज का निमंत्रण स्वीकार नहीं किया था । एक मौलवी साहब के प्रश्न के उत्तर में कहा कि खाने-पीने और विवाह की रीति-रिवाज या प्रतिबंधों का सम्बन्ध धर्म या अधर्म से नहीं है । इनका आधार है स्थानीय अनुयाइयों के साथ व्यवहार में । इनकी अवहेलना करना हानिकारक हो सकता है क्योंकि उसके सहधर्मी उसका बहिष्कार कर देंगे और उनको उस सज्जन की बुद्धिमत्ता के लाभों से वंचित रहना होगा ।

ब्राह्मणों और पुजारियों के खाने-पीने और रूढ़ीवादी तरीकों का प्रेमचन्द ने अपनी कृतियों में मजाक उड़ाया है। एक पात्र पं० मोटेराम हैं। इनका परिचय हमें पहली बार जलवा-ए-इसार (वरदान) में मिलता है। इसने प्रेमचन्द का जीवन भर साथ दिया। प्रेमचन्द ने इसका विभिन्न परिस्थितियों में व्यंगात्मक ढंग से चित्रण किया है। सत्याग्रह आन्दोलन में उसकी क्या भूमिका रही होगी वह उसी शीर्षक की कहानी से विदित है। पंडित जी भूख हड़ताल करते हैं। पेट में चूहे दौड़ रहे हैं। आधी रात को अवसर मिलते ही वह मिठाई की थाली को साफ कर देते हैं।' 'सम्पादक मोटेराम शास्त्री' में वे अपनी पत्रिका की प्रसार संख्या बढ़ाचढ़ा कर बतलाते हैं परन्तु उन्हीं का मित्र कलई खोल देता है। एक बार तो इसी क्रम की एक कहानी के सम्बन्ध में लखनऊ के शालिग राम शास्त्री ने उन पर तथा माधुरी पर मान हानि का दावा भी किया। माधुरी के संस्थापक—प्रेमचन्द जी सह सम्पादक थे - ने बड़े जोश से मुकदमा लड़ा। हिन्दी पत्रकारिता जगत में यह अपनी तरह का पहला मुकदमा था। जब प्रेमचन्द फिल्मों के काम करने बम्बई गये तो मोटे राम को अपने साथ ले जाकर मोटेराम की डायरी लिखवाई। 'मोटर की छींटे' कहानी में भी पंडितजी का मजाक उड़ाया गया। 'मंत्र' कहानी में वह जिन लोगों से घृणा करते हैं वे ही उनकी तीमारदारी करते हैं। पंडितजी का हृदय परिवर्तन होता है। इसी नाम की एक अन्य कहानी में एक चित्र है डा० चड्ढा का और दूसरा है अछूत झंडे वाले भक्त का। भक्त भी गरीब है। सन की रस्सी बनाकर गुजर करता है। पत्नी लकड़ी चुनती है। दिन को कमाया रात को खाया। अगले दिन महाजन से उधार पर सन मिलने की आशंका रहती है। गरीब होते हुए भी भक्त महान व्यक्ति है। किसी को सांप डस ले एकदम निःशुल्क मंत्र पढ़कर उपचार करता है। जब इसके इकलौते बेटे की हालत खराब होती है तो यह उसे डाक्टर चढ्डा के पास ले जाता है। डा० साहिब का गोल्फ खेलने का समय हो रहा है। भक्त गिड़गिड़ाता है परन्तु डा० चड्ढा गोल्फ खेलने चले जाते हैं और भक्त का लड़का मर जाता है। बूढ़ा और बुढ़िया दुखी हैं। दोनों अपना जीवन व्यतीत करते हैं। एक दिन चड्ढा के लड़के को सांप डस लेता हैं। खबर बूढ़े तक पहुंचती है। अभी तक सांप डसने की खबर पाकर भक्त जी भागे जाते थे। आज डा० चड्ढा के लड़के को सांप द्वारा डसने की खबर पर उन्हें सन्तोष सा होता है। बदले की भावना जागृत होती है। वह नहीं जाता। परन्तु ज्यों ज्यों समय

बीतता जाता है उसका मनोबल उसे पुकारता है। वह चुपके से उठकर डा० चड्ढा के घर पहुंचता है और लड़के पर झाड़ा कर उसे जिन्दा कर देता है। डा० चड्ढा विस्मित खड़े देख रहे हैं। वह उसे इनाम देना चाहते हैं परन्तु भक्त डा० चड्ढा को घृणा की दृष्टि से देखता हुआ बाहर चला जाता है। तब चड्ढा को याद आती है कि यह भक्त जी वही व्यक्ति है जिसके बीमार लड़के को उसने देखने से इन्कार किया था। निम्न जाति के लोग महान हैं।

'मंदिर' नाम की कहानी में एक चमारिन विधवा का एक मात्र पुत्र बीमार है। स्वप्न में उसका पति कहता है कि मंदिर में जाकर ठाकुर जी की मूर्ति के पांव पड़ो, लड़का ठीक हो जाएगा। पुत्र की हालत कुछ सुधरती है। मां बहुत कृतज्ञ है। फिर जब लड़के की हालत गंभीर हो जाती है तो उसे याद आती है कि वह भगवान के चरणों में उपासना करने नहीं गयी। यह इसी का परिणाम है। वह अपने गहने गिरवी रखकर दो रु० उगाहती है। फूल, धूप और बताशे लेकर मंदिर जाती है। पुजारी फूल तो ले लेता है परन्तु उसे ठाकुर जी की मूर्ति तक नहीं जाने देता। एक रुपया लेकर वह तावीज देता है और कहता है इसे बांध दें उपचार हो जायेगा। चमारिन विधवा घर लौटती है। बच्चे की हालत खराब हो जाती है। आधी रात को बच्चे की देह ठंडा पड़ रहा है। तीन बजे वह उसे मंदिर ले जाती है और ठाकुर जी के चरणों तक पहुंचने का प्रयत्न करती है। ठाकुर द्वारे का दरवाजा भी खोल लेती है। तब पंडे जग जाते हैं और विधवा की पिटाई करते हैं। धक्के में बच्चा गिर पड़ता है और मर जाता है। उसे मरा देखकर घायल मां भी मर जाती है। दोनों लाशें भगवान के घर में पड़ी हैं। और चारों ओर खड़े हैं निर्दयी धर्म के ठेकेदार।

'ठाकुर का कुआं' भी एक चमारिन की कहानी है। हरिजन बस्ती के कुएं में एक जानवर की लाश पड़ी है। बदबू आ रही है। जोखू बीमार है। उसे पानी की प्यास लगी है। उस कुएं का पानी पिया नहीं जा सकता और ठाकुरों के कुएं से पानी लेने पर प्रतिबन्ध है. फिर भी आधीरात जोखू की पत्नी वहां पानी भरने जाती है। घड़ा जगत तक पहुंना कि ठाकुर ने घर का दरवाजा खोला। डर के मारे घड़ा धड़ाम से कुएं में गिरा। जोखू की पत्नी घर की ओर भागी। यह कहानी पीढ़ियों से चले आ रहे अत्याचारों की ओर संकेत है।

'दूध का दाम' कहानी में मूंगी मेहतरानी बाबू महेश नाथ के तीन लड़कियों के बाद हुए एकमात्र लड़के सुरेश को अपना दूध पिलाती है, हालांकि उसका अपना लड़का मंगल दुबला होता चला जाता है। आगे चलकर मंगल अनाथ हो जाता है। सुरेश इस बच्चे पर रौब जमाता है। जब मंगल रौब नहीं मानता तो उसे घर से बाहर निकाल दिया जाता है। वह घर के दरवाजे के बाहर नीम के पेड़ के तले पड़ा रहता है। उसका साथी एक कुत्ता टामी है। भूख ने मंगल को परेशान कर रखा है, टामी को भी। मंगल देखता है सुरेश का नौकर झूठीं पत्तलें फेंक रहा है। मंगल उसे उठा लेता है और टामी के साथ खाता है। उसे याद आता है कि सुरेश ने उसकी अपनी मां का दूध पिया था। आज उसे इसका दाम मिल रहा है।

'सद् गति' भी अछूतों पर अत्याचार की कहानी है। एक चमार अपनी लड़की के विवाह के मुहूर्त के लिए पण्डित जी के पास जाता है। वह भूखा है। बीमार भी है. परन्तु पण्डित जी उसे काम पर लगा देते हैं। काम बेगार का है, परन्तु वह कहता है, 'पंडित तो पंडित है। कहीं साइत ठीक न विचारे तो फिर सत्यानाश ही हो जाए। जभी तो संसार में (इनका) इतना मान है। साइत का तो सब खेल है। जिसे चाहे बना दे, जिसे चाहे बिगाड़ दे।' पंडित जी के प्रति यही श्रद्धा प्राण लेवा बनती है। चमार हुक्म बजा लाता है। वह बाहर झाड़ू लगाता है, गोबर लीपता है। खलिहान से भूसा उठाता है, लकड़ी चीरता है। बेचारा खाली पेट है। पंडित जी पकवान उड़ाते हैं। उसे पूछते भी नहीं। नीच जाति का जो है. उसे लकड़ी काटने पर लगा देते हैं। गांठ नहीं फटती, उस चमार का पेट पीठ में घुसा जाता है। कुल्हाड़ी उठाना भी पहाड़ मालूम होता है। तब पंडित ललकारते हैं। चमार कुल्हाड़ी चलाते-चलाते मर जाता है। अब समस्या है उसकी लाश उठाने की। एक गोंड चमारों के मुहल्ले में जाकर खबर करता है और कह देता है कि लाश उठाओगे तो पुलिस पकड़ लेगी। चमार लोग लाश उठाने नहीं जाते। यदि पंडित जी फंसते हैं तो फंसने दो। उसकी चमारिन आकर रोने चिल्लाने लगती है। लाश कुएं के रास्ते में पड़ी है। लोग पानी लेने भी नहीं जा सकते। लाश से दुर्गन्ध आने लगती है। आधी रात पंडित जी रस्सी का फंदा कसकर लाश को घसीटते हैं और गांव के बाहर ले जाते हैं। लौटकर स्नान करते है, गंगाजल छिड़कते हैं और दुर्गा पाठ करते हैं। उधर चमार

की लाश को खेत में गीदड़, गिद्ध और कौए नोच रहे हैं। प्रेमचन्द कहते हैं...'यही जीवन पर्यन्त की भक्ति और निष्ठा का पुरस्कार था ।' सद् गति में ब्राह्मण के भयानक चित्रण की बड़ी प्रतिक्रिया हुई। प्रेमचन्द को "घृणा का प्रचारक" उपाधि दी गई। उनकी कृतियों की तुलना किपलिंग की कृतियों से की गयी। 'यदि प्रेमचन्द इस युग के प्रतिनिध मान लिए जाएं तो अब से पचास वर्ष बाद पढ़ने वाले कहेंगे कि उस समय हिन्दुओं का खासकर ब्राह्मण का जीवन घृणा का जीवन था और ब्राह्मणों की जाति बड़ी ही जालिम स्वार्थी पाखंडी और घृणा के योग्य है' (पचास वर्ष हो गये)।

दिसम्बर, 1933 के हंस में प्रेमचन्द ने इस लेख पर टिप्पणी दी। शीर्षक था 'जीवन में घृणा का स्थान : साहित्य में घृणा की उपयोगिता।' प्रेमचन्द ने लिखा...'निन्दा, क्रोध और घृणा में सभी दुर्गुण हैं। लेकिन मानव जीवन में से अगर इन दुर्गुणों को निकाल दिया जाये तो संसार नरक हो जायेगा।' उनका मत था 'बुराइयों से छुटकारा पाने में घृणा भी उपयोगी हो सकती हैं। पाखंड, धूर्तता, अन्याय, बलात्कार और ऐसी ही अन्य दुष्वृत्तियों के प्रति हमारे अन्दर जितनी हो प्रचण्ड घृणा हो सकती है उतनी ही कल्याणकारी होगी।'

'हर एक कट्टरपंथी पुजारी को ब्राह्मण कहकर मैं इस पद का अपमान नहीं कर सकता। इस विकृत्त धर्मोपजीवी आचरण के हाथों हमारा सामाजिक अहित ही नहीं कितना राष्ट्रीय अहित हो रहा है यह वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के हथकंडों से जाहिर है। ऐसी असामाजिक, अराष्ट्रीय, अमानुषिक भावनाओं के प्रति जितनी भी घृणा फैलाई जाए वह थोड़ी है। केवल भावनाओं के प्रति, व्यक्ति के प्रति नहीं, क्योंकि वर्णाश्रम के संचालक हमारे वैसे ही भाई हैं जैसे आलोचक महोदय के।' इन्हीं दिनों प्रेमचन्द ने बनारसी दास चतुर्वेदी को एक पत्र में लिखा : 'मेरी कल्पना का ब्राह्मण त्याग और सेवा की मूर्ति होता है। (यदि किसी व्यक्ति में ये दोनों बातें हैं तो वह ब्राह्मण है)। मेरे विचार में पुजारी और पण्डे भोले-भाले लोगों के अन्धविश्वास का फायदा उठाकर उन्हें लूटते हैं जो बगुले भगत हैं और जिनका दृष्टिकोण संकुचित है। मैं उन्हें हिन्दू समाज का शाप मानता हूं। इन्हीं लोगों ने हमारे समाज का बेड़ा गर्क किया है। इन लोगों का व्यंगात्मक मजाक ही उचित है। और मैंने यही कुछ किया है। यह निर्मल और इनके भाईबन्द राष्ट्रवादियों का

ोला पहन लेते हैं परन्तु इनमें पंडे जाति की सारी कमजोरियां हैं और ये लोग आक्षेप करते हैं हमारे जैसे लोगों पर, जो समाज के स्तर को ऊंचा उठाना चाहते हैं।"

'कफन' में प्रसव वेदना से कराह रही बुधिया का पति माधव कहता है कि तड़पने से तो मर जाना ही अच्छा है। फिर मरना ही है तो जल्दी से क्यों नहीं मर जाती। माधव और पिता घीसू दोनों आलसी हैं। मजूरी ढूंढते, यदि मिलती तो करते भी परन्तु टालमटोल कर। अवसर मिलते ही खेतों से आलू मटर चुरा लेते। एक दूसरे पर विश्वास नहीं। माधव बुधिया की सुध लेने भीतर इस लिए नहीं जाता कि कहीं उसका बाप अलाव से निकाल कर आलू सफाचट न कर दे। दोनों ही कमजोर हैं। उनका जीवन दर्शन कहता है कि जहां मजदूरी करने वाले और मेहनत करने वाले किसान भूखे मरते हैं, वहां उनकी मेहनत से लाभ उठाने वाले मौज करते हैं। यदि भूखा ही मारना है तो कामकर के भूखे क्यों मरें। यदि झूठ बोल कर पैसा इकट्ठा किया जा सके तो क्यों न झूठ बोला जाये। बाप और बेटा जाकर बुधिया के कफन के लिए पैसा इकट्ठा करते हैं और जब कुछ धन मिल जाता है तो शराब की दुकान पर पकवान खाते हैं और शराब से धुत हो जाते हैं। बुधिया उन्हें जीवन में तो पकवान नहीं खिला सकी परन्तु प्राण देकर आज माधव और घीसू के आनन्द का कारण बनी। इस तरह कफन के लिए इकट्ठे किये पैसे उड़ा दिये जाते हैं। यह समाज व्यवस्था पर कड़ा प्रहार है। जिसका कड़ा विरोध महर्षि जी ने किया था। अन्त में मैं कहना चाहूंगा कि प्रेमचन्द समय के साथ चलते थे। मई 1923 में "मलकाना राजपूतों की शुद्धि" के विरुद्ध लिखा था कि आर्य समाज वाले भिन्नाएंगे। तब उनका मत था कि आर्य समाज वाले साम्प्रदायिक रंग में डूबे हैं। चार वर्ष बाद यहां गुरुकुल कांगड़ी में तीन दिन ठहरने पर उनका दृष्टिकोण बदला और अगले आठ बर्षों बाद-निधन के कुछ ही महीने पूर्व-लाहौर आर्य समाज के अन्तर्गत आर्य भाषा सम्मेलन के अवसर पर दिये गये भाषण में कहा :...

आर्यसमाज ने इस सम्मेलन का नाम आर्यभाषा सम्मेलन शायद इसलिए रखा है कि यह समाज के अन्तर्गत उन भाषाओं का सम्मेलन है जिनमें आर्य-समाज ने धर्म का प्रचार किया है। और उनमें उर्दू और हिन्दी दोनों का दर्जा बराबर है। मैं तो आर्यसमाज को जितनी धार्मिक संस्था समझता हूं उतना ही तहजीबी (सांस्कृतिक) संस्था भी समझता हूं। बल्कि आप क्षमा करें तो मैं कहूंगा कि उसके तहजीबी कारनामे उसके धार्मिक कारनामों से ज्यादा प्रसिद्ध और रौशन हैं। आर्य समाज ने साबित कर दिया है कि समाज की सेवा ही किसी धर्म के सजीव होने का लक्षण है। सेवा का ऐसा कौन-सा क्षेत्र है जिसमें उसकी कीर्ति की ध्वजा न उड़ रही हो। कौमी जिन्दगी की समस्याओं को हल करने में उसने जिस दूरंदेशी का सबूत दिया है उस पर हम गर्व कर सकते हैं। हरिजनों के उद्धार में सबसे पहले आर्यसमाज ने कदम उठाया, लड़कियों की शिक्षा की जरूरत को सबसे पहले उसने समझा। वर्ण-व्यवस्था को जन्मगत न मानकर कर्मगत सिद्ध करने का सेहरा उसके सिर है। जाति-भेद-भाव और खान-पान के छूत-छात और चौके-चूल्हे की बाधाओं को मिटाने का गौरव उसी को प्राप्त हैं। यह ठीक है कि ब्रह्मसमाज ने इस दिशा में पहले कदम रखा पर वह थोड़े से अंग्रेजी पढ़े-लिखों तक ही रह गया। इन विचारों को जनता तक पहुंचाने का बीड़ा आर्यसमाज ने ही उठाया। अन्ध-विश्वास और धर्म के नाम पर किये जाने वाले हजारों अनाचारों की कब्र उसने खोदी, हालांकि मुर्दे को उसमें दफन न कर सका और अभी तक उसका जहरीला दुर्गन्ध उड़कर-उड़कर समाज को दूषित कर रहा । समाज के मानसिक और बौद्धिक धरातल (सतह) को आर्य समाज ने जितना उठाया है, शायद ही भारत की किसी संस्था ने उठाया हो। उसके उपदेशकों ने वेदों और वेदांगों के गहन विषयों को जन-साधारण की सम्पत्ति बना दिया जिन पर विद्वानों और आचार्यों के कई-कई लीवरवाले ताले लगे हुए थे। आज आर्यसमाज के उत्सवों और गुरुकुलों के जलसों से हजारों मामूली लियाकत के स्त्री-पुरुष सिर्फ विद्वानों के भाषण सुनने का आनन्द उठाने के लिए खिंचे चले जाते हैं। गुरुकुलाश्रम को नया जन्म देकर आर्यसमाज ने शिक्षा को सम्पूर्ण बनाने का महान उद्योग किया है। सम्पूर्ण से मेरा आशय उस शिक्षा का जो सर्वाङ्गपूर्ण हो, जिसमें मन, बुद्धि, चरित्र और देह, सभी के विकास का अवसर मिले। शिक्षा का वर्तमान आदर्श यही है। मेरे ख्याल में वह चिरसत्य है। वह शिक्षा जो सिर्फ अक्ल तक ही रह जाय अधूरी है। जिन संस्थाओं में युवकों में समाज

से पृथक् रहने वाली मनोवृत्ति पैदा हो, जो अमीर और गरीब के भेद को न सिर्फ कायम रखें बल्कि और मजबूत करे, जहां पुरुषार्थ इतना कोमल बना दिया जाय कि उसमें मुशकिलों का सामना करने की शक्ति न रह जाय, जहां कला और संयम में कोई मेल न हो, जहां की कला केवल नाचने-गाने और नकल करने में ही जाहिर हो, उस शिक्षा का मैं कायल नहीं हूं। शायद ही मुल्क में कोई ऐसी शिक्षा-संस्था हो जिसने कौम की पुकार का इतनी जवांमर्दी से स्वागत किया हो। अगर विद्या हममें सेवा और त्याग का भाव न लाये, अगर विद्या हमें आदर्श के लिए सीना खोलकर खड़ा होना न सिखाये, अगर विद्या हममें स्वाभिमान न पैदा करे, और हमें समाज के जीवन-प्रवाह से अलग रखे तो उस विद्या से हमारी अविद्या अच्छी। और आर्यसमाज ने हमारी भाषा के साथ जो उपकार किया है उसका सबसे उज्ज्वल प्रमाण यह है कि स्वामी दयानन्द ने इसी भाषा में सत्यार्थ-प्रकाश लिखा और उस वक्त लिखा जब उसकी इतनी चर्चा न थी। उनकी बारीक नजर ने देख लिया कि अगर जनता में प्रकाश ले जाना है तो उसके लिए हिन्दी भाषा ही अकेला साधन है, और गुरुकुलों ने हिन्दी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर अपने भाषा-प्रेम को और भी सिद्ध कर दिया है।

मदन गोपाल : जन्म 22 अगस्त, 1919 को हांसी, जिला हिसार में, सी. ए. वी. हाई स्कूल, हिसार से मैट्रिक, डी. ए. वी. कालिज लाहौर से इन्टर और सेंट स्टीफेन्स कालेज, दिल्ली से बी. एस. सी.। पत्रकार-जीवन की शुरुआत लाहौर के 'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट' के सम्पादन से, तत्पश्चात् 'स्टेट्समैन' नई दिल्ली में काफी अर्से तक सम्पादकीय विभाग से सम्बद्ध रहे। बाद में सूचना-प्रसारण मन्त्रालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहे और प्रकाशन विभाग के निदेशक पद पर रहकर सेवा मुक्त हुए। 1979 से 1982 तक दैनिक ट्रिब्यून, चंडीगढ़ का सम्पादन किया।

1944 में प्रेमचन्द पर अंग्रेजी में एक पुस्तक प्रकाशित की जो उन दिनों तक प्रेमचन्द पर पहली पुस्तक थी। पीछे प्रेमचन्द की अनेक कहानियों के अंग्रेजी अनुवाद भी प्रस्तुत किये। मदन गोपाल उन अग्रणी लेखकों में हैं जिन्होंने अंग्रेजी पाठकों को हिन्दी लेखकों से परिचित कराने की शुरुआत [illegible] और उनका मुख्य कार्य तुलसी, भारतेन्दु तथा प्रेमचन्द से सम[illegible] प्रेमचन्द के पत्रों को बड़े श्रम से एकत्र किया जो दो भागों [illegible] नाम से प्रकाशित हैं। उनकी पुस्तक 'प्रेमचन्द, कलम क[illegible] जीवनी की मान्यता प्राप्त है।

मदन गोपाल ने यूरोप, एशिया औ[illegible] की है और पी. ई. एन. के पुराने [illegible] राष्ट्रीय अधिवेशनों में कई [illegible] एक अनुभवी पत्रका[illegible] में मदन गोपाल [illegible]